5672

तिश्चयर

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON Telephone : 22-4110 22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ७ : अंक ४

अगस्त १९८३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

आत्मज्ञान १०१

खरतरगच्छ विभूषण

श्री मोहनलालजी महाराज

का पत्र १०५

चेल्लना हरण १०६

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ११८

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या १२८

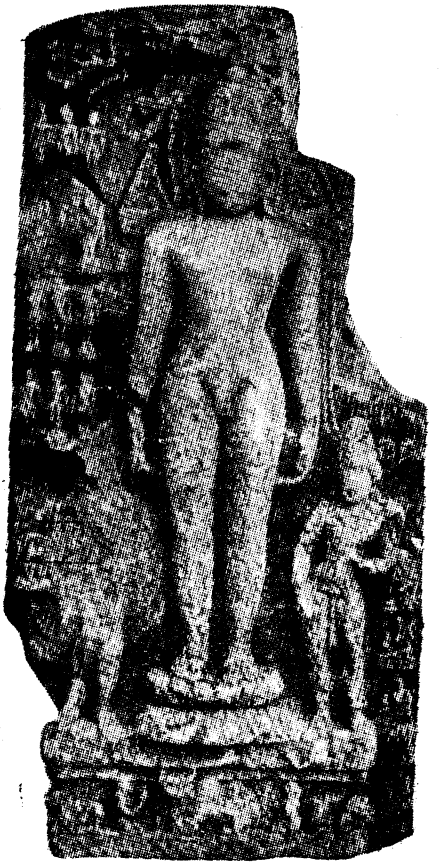

ऋषभनाथ, घाटेश्वर, २४ परगना, पश्चिम बंग
अनुमानिक इसाई १०वीं सदी

आत्मज्ञान

आचार्य श्री पद्म सागर सूरि

आत्मा के विषय में प्रवचन करना सरल है; किन्तु आत्म बोध के अनुरूप व्यवहार कठिन है। ज्ञान की परीक्षा व्यवहार से ही होती है।

किसी की प्रशंसा में बोलना हो तो पाँच मिनट भी मुश्किल से मिलते हैं और निन्दा के लिए घंटे निकल आते हैं। निन्दा का रस हमें पागल बना देता है। दूसरों की निन्दा करके लोग यह सोचकर प्रसन्न होते हैं कि हम उनसे अच्छे हैं। वे भूल जाते हैं कि निन्दा अपने आपमें निन्दनीय है। एक शायर ने लिखा है—

मैं बताऊँ आपको अच्छों की क्या पहिचान है
जो हैं खुद अच्छे वो औरों को नहीं कहते बुरा।

एक अच्छा आदमी देश को आबाद कर सकता है तो बुरा उसे बर्बाद कर डालता है। आत्मा को जानने वाले व्यक्ति किसी की निन्दा में समय नष्ट कैसे कर सकते हैं?

यदि आत्मा एक अमर तत्व है तो किसी मित्र या कुटुम्बी की मृत्यु पर रोना क्यों आ जाता है?

रूपी देह की अपेक्षा अरूपी आत्मा का महत्व अधिक है तो फिर लोग क्यों शारीरिक सुन्दरता पर मुग्ध होते हैं? वे क्यों नहीं सोचते कि सुन्दर शरीर वाला भी दुर्जन हो सकता है और कुरुप शरीर वाला भी सज्जन हो सकता है? सुन्दर शरीर तो एक वेश्या का भी होता है, परन्तु समाज में उसका सम्मान नहीं होता। यह जानते हुए भी लोग सुन्दर शरीर के प्रति क्यों आकर्षित होते हैं? एक कवि के शब्दों में—

मनोहर दीखता यह देह पर सारा घिनौना है।
अशुचि-भंडार चिकने चाम पर थे व्यर्थ भरमाये॥

—सत्यप्रेमी

ऐसा वे क्यों नहीं सोचते?

शुभाशुभ कर्म आत्मा के साथ लगे रहते हैं। हजारों गायें खड़ी हों, फिर भी बछड़ा उनमें से अपनी माँ को पहचान लेता है और उसके पीछे-पीछे चलने लगता है; उसी प्रकार कर्म आत्मा के पीछे चलते हैं। इसीलिए कोई सुखी है, कोई दुःखी है। आत्मज्ञ के हृदय में दुखियों को देखकर अनुकम्पा क्यों नहीं होती?

आत्मज्ञ अपनी इन्द्रियों का गुलाम क्यों होता है ? इन्द्रियों को वह खिड़की दरवाजों की तरह क्यों नहीं देखता ? आत्मा में वह दुर्भावों को क्यों आने देता है ? आत्मा कोई कचरा पेटी नहीं है कि उसे कैसे भी दुर्भावों से भर दिया जाए।

उदाहरणार्थ आँख ही उन्नति और अवनति का केन्द्र बिन्दु है। आँख से प्रभु-प्रतिमा के दर्शन करके हृदय में उत्तम भाव भी लाये जा सकते हैं और भौतिक या शारीरिक सौन्दर्य को देखकर हृदय में कामना का कीचड़ भी भरा जा सकता है। जो विवेकी है, वह हृदय को मलिन करने की भूल कैसे कर सकता है ?

दो दृष्टियाँ होती हैं—मिथ्या और सम्यक्। मिथ्या दृष्टि जीव को सर्वत्र प्रतिकूलता दिखाई देती है और सम्यग् दृष्टि जीव को अनुकूलता।

किसी बगीचे में गुलाब के पौधे को देखकर एक बालक रोने लगा। कारण पूछने पर उसने कहा—"इतने सुन्दर फूलों के साथ काँटे निकल आए।" दूसरा बालक उसी पौधे को देखकर हँसने लगा। उसका कहना था—"इन तीखे काँटों में भी कितने सुन्दर फूल खिल रहे हैं।"

सम्यग् दृष्टि के अभाव का ही यह दुष्परिणाम है कि हम याद रखने की बातें भूल जाते हैं और भूल जाने की बातें याद रखते हैं। व्याख्यान में सुनी प्रभु महावीर की वाणी घर जाते ही भूल जाते हैं और यदि किसी ने कोई कठोर वचन कह दिया हो तो उसे जीवन भर याद रखते हैं और परेशान होते रहते हैं। प्रभु की वाणी का एक वाक्य भी उद्धार कर सकता है—यदि सुनकर उसे रखा जाय।

मरने से पहले, रोहिणेय चोर से, उसके पिता ने कह दिया था कि महावीर की वाणी कभी मत सुनना।

एक दिन रोहिणेय को उसी मार्ग से निकलना पड़ा, जिसके एक ओर प्रभु की देशना चल रही थी। उसने कानों में उँगलियाँ डाल ली, किन्तु भागते समय पाँव में एक काँटा चुभ गया। कानों से हाथ हटाकर उसने झटपट काँटा निकाला और फिर भाग खड़ा हुआ।

दूसरे दिन वह पकड़ लिया गया। राजा ने अपराध कबूल करवाने के लिए एक नाटक किया। रात को अनिन्द्य सुन्दरियों के बीच उसे छोड़ दिया गया। एक सुन्दरी ने उससे कहा—"पुण्योदय से आप मरकर इस स्वर्ग में आये हैं। हम सब अप्सरायें आपकी सेवा में मौजूद हैं। यदि आपने पृथ्वी पर कोई

बुरा काम किया हो तो बता दीजिए। हम इन्द्रदेव से आपको क्षमा दिला देंगी ; अन्यथा आपको नरक में जाना पड़ेगा।'

रोहिणेय जब काँटा निकालने के लिए रुका था तब कुछ वाक्य उसके कानों में पड़ गए थे। प्रभु ने देवों का लक्षण बताया था कि जमीन पर उनकी परछाईं नहीं गिरती, उनके गले का पुष्पहार नहीं मुरझाता, वे जमीन से कुछ ऊपर खड़े रहते हैं और पलकें नहीं झपकाते।

रोहिणेय को देवों का लक्षण याद आ गया। लक्षण के अनुसार एक भी बात उन कथित अप्सराओं में मौजूद नहीं थी।

वह समझ गया कि मेरे मुँह से अपराध कबूल करवाने के लिए ही यह सब नाटक किया जा रहा है। वह सँभल गया। बोला—'मैंने सब पुण्य के ही कार्य किए हैं और यह स्वर्ग पाया है। पाप तो एक भी नहीं किया।'

परिणामतः वह छूट गया। घर पर आकर उसने विचार किया कि दो मिनट प्रभुवाणी सुनने से यदि मेरी जान बच सकती है तो पूरा प्रवचन सुनने से कितना लाभ होगा? उसका जीवन परिवर्तित हो गया और वह आत्म-कल्याण करने में सफल हुआ।

आत्मज्ञ क्यों नहीं समझते कि हमारे कान ऐसी पवित्र वाणी सुनने के लिए ही हैं? हम जो कुछ सुनते हैं, वह हमारे अवचेतन मन में भर जाता है और प्रसंग आने पर प्रकट होता है। उससे हमारा भविष्य बनता बिगड़ता है। ऐसा जान लेने पर भी क्यों लोग श्रुतज्ञान की ओर ध्यान न देकर निन्दा सुनने में या कामनावर्द्धक संगीत सुनने में रस लेते हैं?

देश के रक्षक प्रताप को भामाशाह ने अपनी समस्त सम्पत्ति दे दी। क्षणिक सम्पत्ति से जितनी भलाई हो सके, करनी चाहिए—

परोपकाराय सतां विभूतयः।

सज्जनों की सम्पत्तियाँ परोपकार के लिए ही होती है।

यह जानकर भी लोग क्यों परिग्रह के पीछे पड़े रहते हैं? क्यों उसके लिए दौड़-धूप करके अशान्ति मोल लेते हैं? क्यों जीवन पुष्प को मुरझा जाने देते हैं?

अनार्य देश में धर्मोपदेश के लिए जाने को तैयार साधु क्षेमंकर से गुरुजी ने कहा—'वहाँ का मार्ग ऊबड़-खाबड़ है, भोजन और जल भी समय पर और पर्याप्त नहीं मिल सकेगा, वहाँ के लोग भी बड़े क्रूर हैं। वे गालियाँ देंगे, अपमान करेंगे और मारपीट तक करेंगे।'

इस पर क्षेमंकर ने सारे परिषह एक फूल की तरह हँसते हुए सहने और हर हालत में अपने कर्त्तव्य का पालन करने का सुदृढ़ संकल्प प्रकट किया। फल-स्वरूप गुरुदेव के आदेश से वे अपने उद्देश्य की पूर्त्ति में लग गये और सफल रहे।

वैसे कोई किसी को सुखी या दुःखी नहीं कर सकता। शुभाशुभ कर्मों से ही अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ बनती हैं।

झरोखे में खड़ी बहिन ने मुनिवेष में गुजरते भाई को देखकर कहा—'इनका शरीर पहले कैसा सुन्दर था और तपस्या के कारण अब सूखकर कैसा काँटा हो गया है।'

यह सुनकर राजा को शंका हुई कि वह मुनि कहीं इसका पूर्व प्रेमी तो नहीं था? राजा ने हुक्म दिया कि उस साधु की चमड़ी खींचकर लायी जाय। सिपाही गये। कसाई को चमड़ी खींचने का काम सौंपा गया। साधु ने शान्तिपूर्वक अपना तन कसाई को सौंप दिया और मन अरिहंत को। कसाई से कह दिया—'मेरी हड्डियों से कहीं तुम्हारे हाथों में चमड़ी निकालते समय चोट न लग जाए इसका ध्यान रखना।'

इस प्राणान्तक उपसर्ग को द्वेषरहित मध्यस्थ भाव से सहने के फलस्वरूप मुनि के कर्म कट गये। उन्हें केवल ज्ञान के बाद मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त हुआ।

मुनि की रक्तरंजित मुँहपत्ती को खाने की वस्तु समझ कर एक चील ले उड़ी; किन्तु उसमें खाने योग्य कुछ भी नहीं था, इसलिए उसे चोंच से छोड़ दिया। मुँहपत्ती झरोखे में बहिन के पास गिरी। वह उसे देखकर मूर्च्छित हो गयी। जब राजा को वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उसे अपने विवेकहीन आदेश के लिए घोर पश्चात्ताप हुआ। अन्त में राजा और रानी दोनों साधु-साध्वी बन कर आत्म-कल्याण की साधना में लग गये।

इसे कहते हैं—आत्मज्ञान! कहाँ है ऐसा आत्मज्ञान, जो केवल चर्चा में नहीं, व्यवहार में भी दिखाई दे?

आचार्य श्री पद्मसागर सूरि जी आज के एक प्रभावक आचार्य हैं। आपकी ही मध्यस्थता में श्री सम्मेद शिखर महातीर्थ का वर्षों से चल रहा विवाद समाप्त हुआ है। आपका प्रवचन अत्यन्त प्रभावक, सुबोध एवं हृदयग्राही होता है।

खरतरगच्छ विभूषण श्री मोहनलाल जी महाराज का पत्र

[यहाँ खरतरगच्छ विभूषण श्री मोहनलाल जी महाराज का एक पत्र प्रकाशित किया जा रहा है जो सम्मेतशिखरजी सम्बन्धी मई अंक में प्रकाशित खाजूराम मोदी के पत्र के साथ आचार्यश्री जिनमुक्ति सूरिजी को भेजा गया था। श्री मोहनलाल जी महाराज पहले कलकत्ता के आदेशी यति थे। इसी वर्ष (१९३० विक्रमीय) सर्व परिग्रह त्याग कर साधु हो गए और उच्च चारित्र सम्पन्न महापुरुष हुए। इनके उपदेश द्वारा ओसियां तीर्थ का उद्धार हुआ। शत्रुंजय की तलहटी के धनवसही तथा अनेक स्थानों के मन्दिर प्रतिष्ठित हुए। बम्बई में साधु विहार खोलने वाले ये प्रथम महापुरुष थे। घर-घर में उनका चित्र लगा है। इनकी यह विशेषता थी कि ये गच्छ के आग्रहों से मुक्त थे। —भँवरलाल नाहटा]

॥ जं। यु। प्र। भ। श्री १००८ श्री श्री श्री जिन मुक्त सूरीश्वरान् चरणान् लि। कलकत्ता सें पं। मोहन विनयचंद की त्रिकाल द्वादसावर्त्त वंदनाऽवधारज्यो ऽत्र तत्र सं तथा आपने मेरी तो चिठी सें वि खबर ली नहीं परंत ये चेल (ा) दोना आपके सपरत है आ.....हा संभाल रखनी मुनासब है मेरा तो लिखने का जोर था सो लिख दिया है बड़ा तो हुस्यार है लेकिन छोटे कि खबर ज्युं बने त्युं राखज्यो ? मैं तो सिद्धाचल जी प्रमुख की जात्रा करूंगा और कुछ प्रयोजन किसी बात से है नहीं इनके भाग्य इनके साथ है ऽलं और ये पत्री मोदि खाजुराम जी ने भेजी है वास्ते जैन शासन के उनका काम है इसे लिखा है आपकुं समरथ जाणके सो चिट्ठो कुं पढके आपके चित्त में ज्युं बठै त्युं उपाय करणे का और इसका प्रत्युत्तर जल्दी भेजना इसमें आपको बड़ा लाभ.....हो तब होगा इस देश में आपका बड़ा नाम है काम जैन शासन का है।

चेल्लना हरण

[जैन कथानक]

वैशाली गणतन्त्र के नायक चेटक की सात कन्याएँ थीं—प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिवा, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा और चेल्लना। इनमें प्रभावती का विवाह वीतभय के राजा उदयन के साथ, पद्मावती का विवाह अङ्गराज दधिवाहन के साथ, मृगावती का विवाह कौशाम्बीपति शतानिक के साथ, शिवा का विवाह उज्जयिनी राज प्रद्योत के साथ और ज्येष्ठा का विवाह कुण्डग्राम वासी राजा सिद्धार्थपुत्र नन्दीवर्द्धन के साथ हुआ था। सुज्येष्ठा और चेल्लना कुँवारी थीं।

सुज्येष्ठा के रूप की ख्याति उन दिनों हर मुख पर थी। उस ख्याति ने वैशाली की सीमा का अतिक्रम कर मगध में प्रवेश किया। हर्यंक कुलोत्पन्न मगधराज श्रेणिक सुज्येष्ठा के रूप की ख्याति सुनकर उसके प्रति आकृष्ट हो गए अतः सुज्येष्ठा की पाणि प्रार्थना के लिए वैशालीपति चेटक के पास दूत भेजा।

किन्तु हैहय वंशीय चेटक ने मगधाधिपति की प्रार्थना स्वीकार नहीं की। मैं अपनी कन्या श्रेणिक को नहीं दूँगा कहकर दूत को लौटा दिया।

भग्नदूत से उस दूत ने राजा को संवाद सुनाया। सुनते ही श्रेणिक का मुख रक्तिम हो उठा। यह सरासर अपमान के सिवाय और कुछ नहीं है। चेटक यदि कुण्डग्रामवासी सिद्धार्थ को अपनी बहिन और तत्पुत्र नन्दीवर्द्धन को अपनी कन्या दे सकते हैं तो फिर मगधाधिपति को कन्या न देने का तो कोई कारण ही नहीं है। इसका तात्पर्य है विदेह मगध के सौहार्द की कामना नहीं करता। क्रुद्ध श्रेणिक ने उसी समय युद्ध यात्रा प्रारम्भ की होती किन्तु न जाने क्या सोचकर अपने प्रधान अमात्य अभय कुमार को बुला भेजा। अभय कुमार धीर और शान्त प्रकृति के थे। सबकुछ सुनकर वे बोले—'महाराज, आप चिन्ता न करें। मैं सुज्येष्ठा को यहीं ला दूँगा। युद्ध प्रयोजनीय नहीं है। साँप भी मर जाएगा और लाठी भी नहीं टूटेगी। मगध इस अपमान का यथायोग्य उत्तर देकर अपने सम्मान को अक्षुण्ण रखेगा।'

अभयकुमार राजा के यहाँ से अपने घर आए। फिर वेश परिवर्तन कर वणिक वेश में स्त्रियोंपयोगी पण्य द्रव्य और कुछ रंग तूलिकाएँ और चित्र अंकन के कागज लेकर वैशाली के लिए रवाना हो गए।

गंगा के उत्तर में था वैशाली राज्य, दक्षिण में मगध। एक था गणतन्त्र और दूसरा था राज्यतन्त्र। शायद इसीलिए दोनों में सद्भाव नहीं था। फिर मगध एक विशाल साम्राज्य का स्वप्न भी देख रहा था। चेटक को यह पसन्द नहीं था। एतदर्थ अन्य राज्यों को कन्याएँ दीं किन्तु मगध को देना स्वीकार नहीं किया।

चेटक थे तो वैशाली गणतन्त्र के नायक किन्तु उनकी समृद्धि अन्य किसी भी राजा से कम नहीं थी। सात खण्ड का उनका महल था, लोक-लस्कर था, सिपाही-संतरी थे। इस महल के जिस ओर कन्या-अन्तःपुर था वहाँ परिचारिकाओं के आने-जाने का छोटा पथ था। वह पथ जहाँ राजपथ से मिलता था वहाँ एक छोटा द्वार था। द्वार था अतः द्वारी भी था। किन्तु था मात्र एक। राजमहल के भीतर-बाहर विस्तीर्ण वृक्ष-वाटिका थी। अशोक, पुन्नाग, अरिष्ट, शिरीष आदि छायादायी वृक्षों का वहाँ जैसे समारोह था। इसी द्वार के सम्मुख राजपथ के उस पार अभयकुमार आए और एक छोटी दुकान सजाकर बैठ गए।

यह दुकान वैशाली के नगरपाल सुबन्धु की दृष्टि में आयी थी किन्तु उस समय वैशाली की समृद्धि के लिए भिन्न देशागत मनुष्य भी आकर दुकानें खोला करते थे अतः कोई बाधा नहीं आयी। किन्तु दुकान का जो स्थान चुना गया उसके लिए सुबन्धु के मन में खटका था। राजमहल के सम्मुख जहाँ अन्य दुकानें लगी हुई थीं वहाँ दुकान न लगा राजमहल के पश्चात् भाग में जहाँ बिक्री की सम्भावना कम होती है दुकान खोलने का क्या उद्देश्य हो सकता है? परन्तु जब तक कुछ जाना नहीं जाता तब तक कुछ किया भी नहीं जा सकता था। फिर भी उसने इस दुकान पर अपना लक्ष्य रखा। एक दिन कुछ खरीदने के बहाने दुकान में प्रवेश किया। बातचीत के दौरान पूछा—'भद्र! आप तो लिच्छवि नहीं लगते।'

अभयकुमार कुछ मुस्कुराए। बोले—'नहीं, मैं लिच्छवि या मल्ल नहीं हूँ। मैं अंग देश से आया हूँ।'

'अंगदेश के कहाँ से?'

'राजधानी चम्पा से।'

'चम्पा! वहाँ तो वैशाली की द्वितीय राजकन्या पद्मावती का विवाह हुआ है।'

अभयकुमार ने ईषत् गर्दन झुकाकर कहा—'जानता हूँ।'

'आपका नाम?'

'श्रीमन्त साधु।'

उस दिन वहीं तक बातचीत हुई। अभयकुमार अब श्रीमन्त साधु के नाम से परिचित हैं। मैं भी अब इसी नाम का व्यवहार करूँगा।

नवीन दुकान की चर्चा कन्यान्तःपुर में भी पहुँच गई। सुरभित तेल, केश-बन्धन पास, अलक्तक, चूर्ण आदि लाने के लिए परिचारिकाओं को राजमहल से बहुत दूर जाना पड़ता था। किन्तु अब तो पथ पार होते ही थी दुकान। अतः श्रम बहुत लाघव हो गया था।

सुज्येष्ठा की प्रिय परिचारिका बान्धुलि जब उस दिन चूर्ण लेकर तुरन्त लौटी तो उसने विस्मित होकर पूछा—'अरे ओ बान्धुलि, पहले तो तुझे चूर्ण लाने में बड़ी देर लगा करती थी, किन्तु आज तो अभी गई और अभी आ भी गई?'

बान्धुलि हँसकर बोली—'हाँ राजकुमारी, ऐसा ही हुआ है। कन्यान्तःपुर के पिछले दरवाजे के सम्मुख एक नवीन दुकान खुली है इसीलिए इतनी शीघ्रता से ले आई।'

'तभी ऐसा हुआ'—कहकर सुज्येष्ठा मुस्कुरायी।

फिर बान्धुलि श्रीमन्त साधु के रूप गुण के विषय में बताने लगी। बोली—'जितने अच्छे हैं वे उतनी ही सस्ती हैं उनकी चीजें।'

सुज्येष्ठा हँसकर बोली—'अभी नयी-नयी दुकान खोली है ना इसीलिए।'

श्रीमन्त साधु चित्र अंकित करने बैठे। उसी समय वहाँ सुबन्धु पहुँचे। उन्हें चित्र बनाते देखकर बोले—'तो आप केवल वणिक ही नहीं चित्रकार भी हैं?'

श्रीमन्त ने कोई उत्तर नहीं दिया केवल थोड़ा मुस्कुराया। सुबन्धु ने कहा— देखूँ किसका चित्र है?'

श्रीमन्त ने सुबन्धु को चित्र दिखाया। चित्र महाराज चेटक का था।

'अरे! आप तो कुशल चित्रकार हैं! इस चित्र को बनाकर आप क्या करेंगे?'

'महाराज चेटक को उपहार दूँगा।'

'यह तो बहुत अच्छा है'—कहता हुआ सुबन्धु चला गया।

इसके कुछ देर पश्चात् ही बान्धुलि वहाँ पहुँची। श्रीमन्त चेटक के चित्र को रखकर अन्य चित्र में रंग भर रहा था। बान्धुलि चुपचाप इस कार्य को देखती रही। फिर बोली—'आप चित्रकार भी हैं यह तो मालूम ही नहीं था। यह किसका चित्र है?'

'महाराज श्रेणिक का।'

'मगधाधिपति महाराज श्रेणिक?'

'हाँ।'

बान्धुलि चित्र हाथ में लेकर विमुग्ध-सी देखती रही। तेजस्विता, रूप और पौरुष का ऐसा सुन्दर समावेश इसके पूर्व उसने नहीं देखा था।

'क्या आपने महाराज श्रेणिक को देखा है?' बान्धुलि ने पूछा।

'हाँ, कई बार देखा है।'

'तो क्या वे चित्र जैसे ही सुन्दर हैं?'

'चित्र से भी बहुत-बहुत सुन्दर। उस सौन्दर्य को कोई भी चित्रकार कभी अंकित नहीं कर सकता। वे तो रूप में रतिपति कन्दर्प ही हैं।'

सुज्येष्ठा के पाणि-ग्रहण के लिए महाराज श्रेणिक ने दूत भेजा था किन्तु महाराज चेटक ने उसे लौटा दिया यह बात बान्धुलि ने सुनी थी। लेकिन आज श्रेणिक का चित्र देखकर वह सोचने लगी—'काश! सुज्येष्ठा का विवाह राजा श्रेणिक के साथ हुआ होता। विधाता ने दोनों को एक दूसरे के अनुरूप गढ़ा है।' यही सोचती-सोचती बान्धुलि अन्तःपुर लौटी। फिर सुज्येष्ठा को धीरे से बोली—'जीजी, वह श्रीमन्त केवल वणिक ही नहीं चित्रकार भी है। उसके बनाए चित्रों में एक चित्र मैंने देखा—क्या चित्र था! रूप में तो कन्दर्प को भी लजा रहा था।' कहती हुई बान्धुलि इस प्रकार ध्यानमग्न हो गई मानो ध्यान में उस चित्र को प्रत्यक्ष कर रही है।

सुज्येष्ठा कुछ देर तो चुप रही फिर हँसती हुई बोली—'लगता है तूने कन्दर्प को देखा है तभी तो बोल रही थी—रूप में कन्दर्प को भी लज्जित करता है।'

बान्धुलि बोली—'यह हँसी की बात नहीं है जीजी। वैसा रूप और तेजस्विता मैंने कहीं नहीं देखी। अच्छा बताओ तो वह चित्र किसका है?'

सुज्येष्ठा हँसकर बोली—'मैंने क्या चित्र देखा है जो बताऊँ?'

'नहीं देखा तो क्या। अनुमान से बताओ वह चित्र किसका हो सकता है?'

'बड़ा तंग कर रही है तू तो ! प्रद्योत का है क्या वह चित्र ?'

'ऊहूँ ।'

'तब क्या शतानिक का ?'

'नहीं, यह भी नहीं ।'

श्रेणिक का नाम सुज्येष्ठा के मन में आया था। किन्तु बोलती-बोलती रह गयी। लज्जा आ-आकर उसे रोकने लगी। श्रेणिक के रूप की ख्याति उसने सुनी थी। श्रेणिक के साथ उसका विवाह भी हो सकता था। किन्तु.... सुज्येष्ठा ने एक दीर्घ निःश्वास खींचा।

'बताओ न जीजी ।'

'मैं नहीं जानती।'

'तुम खूब जानती हो' कहकर बान्धुलि हँस पड़ी। 'अभी तुम जिसके विषय में सोच रही थी उसी की है—महाराज श्रेणिक की।'

यह सुनते ही सुज्येष्ठा रोमांचित हो गयी। नेत्रों के कोण आर्द्र हो उठे। बोली—'बान्धुलि, तू यह कैसे जान सकी कि मैं उन्हीं के विषय में सोच रही थी ?'

'मैं सब जानती हूँ' कहती हुई बान्धुलि विहँस पड़ी। फिर बोली—'तुम देखोगी जीजी वह चित्र ?'

श्रेणिक का चित्र देखने की सुज्येष्ठा को पूर्ण लालसा थी किन्तु, न जाने क्या सोच कर वह बोली—'नहीं छोड़।' तदुपरान्त अपने कक्ष में जाकर दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया।

बान्धुलि कुछ क्षण विमनस्क-सी होकर बाहर चली गयी। फिर चेल्लना को यही सब बातें बतायी। चेल्लना सुज्येष्ठा की छोटी बहन थी। दोनों में गहरा प्रेम था। चेल्लना ने जाकर सुज्येष्ठा के कक्ष-द्वार पर दस्तक दी। पहले तो सुज्येष्ठा ने कोई उत्तर नहीं दिया। बाद में अवरुद्ध कण्ठ से बोली—'कौन है ?'

'मैं चेल्लना ! दरवाजा खोलो।'

अतः बाध्य होकर सुज्येष्ठा को दरवाजा खोलना पड़ा। चेल्लना ने देखा कि रो-रोकर सुज्येष्ठा के दोनों नेत्र सूज गए हैं।

चेल्लना सुज्येष्ठा के गले से लगकर बोली—'जीजी, बिना देखे ही तुम्हारी यह अवस्था है। देखने पर तो न जाने क्या होगा ?'

सुज्येष्ठा चेल्लना से लिपट कर रोने लगी। चेल्लना की आँखें भी भर आईं। बोली—'जीजी, तुम उनके प्रेम में मरी जा रही हो—विवाह में भी

कोई बाधा नहीं थी किन्तु पिताजी ने तो सब कुछ मटियामेट कर दिया है। उपाय भी क्या है ?'

सुज्येष्ठा रोती हुई बोली—'उपाय तो कुछ भी नहीं है। मेरी मृत्यु के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं। किन्तु एक बार उन्हें देखे बिना मृत्यु की भी इच्छा नहीं।'

चेल्लना रुदन के मध्य ही हँस पड़ी। मानो धूप और वर्षा इन्द्रधनुषी झलक दे गई। चेल्लना बोली—'अभी मँगवाती हूँ मैं वह चित्र।'

मन ही मन चित्र देखने की इच्छा होते हुए भी बोली—'नहीं बहन, रहने दो। किसी ने देख लिया तो अनर्थ हो जाएगा।'

'अनर्थ में अब बच ही क्या गया है'—कहती हुई चेल्लना पुनः हँस पड़ी। फिर आँखों ही आँखों में बान्धुलि को कुछ इशारा किया। बान्धुलि तुरन्त दौड़कर बाहर चली गयी।

श्रीमन्त चित्र समाप्त कर बान्धुलि के आगमन की प्रतीक्षा ही कर रहा था तभी बान्धुलि पहुँची। बोली—'साधु, श्रेणिक का चित्र एक बार और दिखाओ तो !'

श्रीमन्त ने बान्धुलि के हाथों में वह चित्र दिया।

बान्धुलि बहुत देर तक वह चित्र देखती रही। फिर बोली—'मैं यह चित्र राज्यान्तःपुर में एकबार राजकन्याओं को दिखाने के लिए ले जाना चाहती हूँ।'

श्रीमन्त ने सिर हिलाकर कहा—'कभी नहीं।'

बान्धुलि विस्मित हो गई। बोली—'क्यों ?'

श्रीमन्त हँसते हुए बोला—'कहीं ऐसा न हो कि मुझे राजकन्याओं के मनःकष्ट का कारण बनना पड़ जाए ?'

'अच्छा ?' कहती हुई बान्धुलि हँस पड़ी। 'यदि आपने चित्र नहीं दिया तब तो राजकन्याओं के मनःकष्ट के आप और अधिक निमित्त बन जाएँगे। सुज्येष्ठा जीजी तो मेरे मुख से उनके रूप का वर्णन सुनने मात्र से ही पागल हो उठी है। बिना चित्र देखे उसके प्राण रहेंगे भी कि नहीं सन्देह है।'

श्रीमन्त मन ही मन आह्लादित हो गया। फिर भी कुछ अभिनय करता हुआ बोला—'किन्तु कहीं यदि यह प्रकट हो गया कि मैंने कन्यान्तःपुर में चित्र भेजा है तो भारी संकट में फँस जाऊँगा।'

इसके लिए भयभीत मत होइए। मैं, आप और राजकन्याओं के सिवाय यह बात कोई भी नहीं जान पाएगा। चित्र दिखाकर पुनः आपको लौटा दूँगी।'

'ध्यान रखना कोई देख नहीं ले'—कहते हुए श्रीमन्त ने बान्धुलि के हाथों में चित्र दे दिया। चित्र आँचल में छिपाकर बान्धुलि राज्यान्तःपुर की ओर चली।

बान्धुलि के जाने के तुरन्त बाद ही वहाँ सुबन्धु आया। बोला—'चित्रकार, आपने वह चित्र पूरा कर लिया क्या?'

'नहीं, कुछ बाकी है।' कहता हुआ श्रीमन्त उसे चेटक का चित्र दिखाने लगा।

उस चित्र को देखकर सुबन्धु बोला—'श्रीमन्त साधु, आप सचमुच ही एक सुदक्ष शिल्पी हैं। देवी आम्रपाली का चित्र बनाएँगे?'

श्रीमन्त हँसा। बोला—'वह तो मेरा सौभाग्य होगा।'

सुबन्धु ने कहा—'तब ठीक है, मैं पूरी बातचीत कर आपको बताऊँगा।'

सुज्येष्ठा चित्र देखकर पुनः रो पड़ी। चेल्लना रोयी तो नहीं किन्तु रोमांचित हो उठी। ऐसे रूपवान् व्यक्ति का चित्र देखकर भला कौन रमणी है जो द्रवित न हो।

बान्धुलि उस चित्र को लौटाते हुए बोली—'आप ऐसा कोई उपाय कीजिए जिससे इस पुरुष-प्रवर के साथ राजकन्या सुज्येष्ठा का साक्षात्कार हो सके।'

श्रीमन्त चित्र रखते हुए बोला—'बड़ा कठिन कार्य है। फिर भी यथासाध्य चेष्टा करूँगा। जैसा भी हो एक सप्ताह बाद बताऊँगा।

श्रीमन्त ने श्रेणिक को पत्र लिखा—'महाराज! कुछ चुनिन्दे तीरन्दाज लेकर शीघ्र वैशाली आइए। देवी आम्रपाली का जन्म दिवस समीप ही है। उस दिन नगरी जब उत्सव में मस्त रहेगी आपको सुज्येष्ठा का हरण करना होगा।'

पत्र मिलते ही श्रेणिक चुनिन्दे अंग रक्षकों को लेकर वणिक वेष में वैशाली पहुँच गए। आम्रपाली के जन्म दिवस के उपलक्ष में नगरी सजायी जा रही थी। विदेशों से भी राजागण और वणिक वैशाली में आने लगे थे। अतः मगधराज की उपस्थिति किसी को भी ज्ञात नहीं हुई।

बान्धुलि भी प्रतिदिन कुछ न कुछ खरीदने के लिए आती रहती। अतः वह प्रतिदिन ही संवाद ले जाती। श्रीमन्त कहता—'अभी कुछ दिन धैर्य रखो। राजकन्या का मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण होगा।'

आम्रपाली के जन्म-दिवस के मात्र दो दिन शेष हैं। श्रीमन्त ने उस दिन बान्धुलि से कहा—'बान्धुलि, मैंने सब ठीक कर रखा है। सुज्येष्ठा को मगध ले जाने के लिए महाराज श्रेणिक वैशाली आ गए हैं। अब तुम्हें एक काम करना होगा।'

'क्या काम?' बान्धुलि ने कहा।

तब श्रीमन्त ने पूरी योजना बान्धुलि के सम्मुख रखी और उसे क्या करना होगा वह भी बता दिया। सुनकर बान्धुलि उत्फुल्ल हो उठी। बोली—'यह काम कुछ कठिन नहीं है। द्वारी मेरा अनुगत है। देवी आम्रपाली के जन्म-दिवस पर उसे मोदक खिलाऊँगी तब फिर क्या कठिनाई है।'

बान्धुलि ने सारी बात जाकर सुज्येष्ठा को बतलाई। सुज्येष्ठा का मुख भी खिल पड़ा। चेल्लना भी वहाँ उपस्थित थी। वह सुज्येष्ठा से बोली—'जीजी, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।'

सुज्येष्ठा का दिल उदार था। सोचने लगी—राजाओं के तो कितनी ही रानियाँ होती हैं। चेल्लना भी श्रेणिक की रानी बन जाएगी। हम दोनों बहन साथ-साथ रहेंगे। सत्य तो यह था कि वह चेल्लना को खूब प्यार करती थी।

आखिर आम्रपाली का जन्म-दिवस आ गया। सन्ध्या होने में भी देर नहीं थी। समस्त नगरी थी उत्सव मुखर। राजन्य एवं श्रेष्ठीगण सभी आम्रपाली के प्रासाद की ओर गए थे। आज अधिकांश रक्षक भी उसी ओर थे। कन्यान्तःपुर के पीछे की ओर तो वैसे भी सन्नाटा रहता था आज तो वह और भी बढ़ गया था।

बान्धुलि उत्सवानुकूल वस्त्रों में सज-धजकर द्वार पर पहुँच गयी। उसकी वेश-भूषा देखकर द्वारी विस्फारित नेत्रों से उसे देखने लगा। बान्धुलि की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखता हुआ बोला—'आज किधर? अभिसार के लिए जा रही हो क्या?'

बान्धुलि ने उसकी ओर ऐसा कटाक्ष किया कि उस कटाक्ष से द्वारी तो क्या बड़े-बड़े तपस्वियों का भी माथा चक्कर खा जाता।

बान्धुलि की देह से लोध्ररेणु की सुवास छूट रही थी। उसने द्वारी के नासारन्ध्रों में प्रवेश कर उसे और भी उन्मना बना दिया। बोला—'रंगिणि, कौन है वह नागर ?'

बान्धुलि ने इसका कोई प्रत्युत्तर न देकर तर्जनी द्वारी के मुख पर रख दी। फिर आँचल से मोदक निकाल कर बोली—'देवी सुज्येष्ठा ने आम्रपाली के जन्म-दिवस के उपलक्ष में अन्तःपुर में मोदक वितरण किया है। मुझे जो मोदक मिला वह मैं तुम्हारे लिए ले आयी हूँ। अब मुँह खोलो। मैं तुम्हें खिला दूँ।' द्वारी ने मुँह खोला। बान्धुलि ने मोदक का एक टुकड़ा उसके मुँह में डाल दिया। द्वारी मोदक चबाते हुए बोला—'तुम भी थोड़ा खाओ बान्धुलि !'

बान्धुलि बोली—'आज मेरा व्रत है। खाना नहीं है।' फिर थोड़ा-थोड़ा करके सारा मोदक द्वारी को खिला दिया।

मोदक खाने के पश्चात् द्वारी का माथा झनझना उठा। वह जाकर शय्या पर सो गया। सोते ही गहरी निद्रा में निमग्न हो गया।

मोदक में अहिफेन मिला हुआ था।

द्वारी के सोते ही बान्धुलि अन्तःपुर की ओर गयी।

रात्रि का प्रथम याम बीत चला है। कन्यान्तःपुर का पिछला द्वार खुला है। एक अशोक वृक्ष की छाया में सुज्येष्ठा और चेल्लना खड़ी है। यहीं से महाराज श्रेणिक उन्हें अश्व पृष्ठ पर चढ़ा लेंगे। द्वारी अपने कक्ष में निद्रित है। बान्धुलि अन्तःपुर का पहरा दे रही है। श्रेणिक के राजकन्याओं को ले जाने के पश्चात् बान्धुलि घाट पर जाएगी। श्रीमन्त ने कहा था—उसके लिए भी एक छोटी नौका अपेक्षा करेगी। सहसा—'अरे, रे', कहती हुई सुज्येष्ठा अस्फुट आर्त्तनाद कर उठी।

चेल्लना ने पूछा—'क्या हुआ जीजी ?'

सुज्येष्ठा बोली—'मेरी रत्न पेटिका तो लाना ही भूल गयी। अरहन्नक ने कम्बोज से लाकर पिताजी को जो हार दिया था वह तो उसी में है। तुम जरा ठहरो। मैं तुरन्त लेकर आती हूँ।'

सुज्येष्ठा चली गयी। चेल्लना धड़कते हृदय से इन्तजार करने लगी। समय, मुहूर्त्त, काल मानो पर्वत से स्थिर हो गए थे।

कुछ देर पश्चात् ही अश्व-खुरों की सामान्य ध्वनि सुनाई पड़ी। तभी न जाने किसने अपनी बलिष्ठ बाहुओं में जकड़ कर उसे अश्व-पृष्ठ पर ले लिया एवं अश्व द्रुतगति से भागा। चेल्लना को कुछ कहने का अवसर ही नहीं मिला।

सुबन्धु ने श्रीमन्त को देवी आम्रपाली के प्रासाद में ले जाने को कह रखा था। जब वह आया तो देखा, श्रीमन्त की दुकान का द्वार बन्द था। सुबन्धु आश्चर्यचकित हो गया। कहाँ गया श्रीमन्त? अकेला तो वह आम्रपाली के प्रासाद में जा नहीं सकता। फिर न जाने क्या सोचकर वह कन्यान्तःपुर के द्वार की ओर गया।

वहाँ अन्धकार में अशोक वृक्ष के नीचे एक स्त्री को अस्पष्ट-सा खड़े देखा। बोला—'कौन?'

सुज्येष्ठा रत्न पेटिका लेकर जब आयी तब वहाँ चेल्लना को न देखकर उत्कंठित-सी खड़ी थी। सोच रही थी—तो क्या चेल्लना ने विश्वासघात किया? उसे छोड़कर वह अकेली ही श्रेणिक के साथ चली गयी? अब मेरा क्या होगा? यही सब सोचते-सोचते उसकी चेतना जैसे लुप्त हुई जा रही थी तभी 'कौन' शब्द उसके कानों में पहुँचा। मन में आशा का संचार हुआ। सोची—शायद यह श्रेणिक का ही आदमी है। अन्य कोई हो सकता है यह वह सोच ही नहीं पायी। अतः साथ-साथ ही जवाब दिया—'मैं सुज्येष्ठा हूँ।'

इतनी रात सुज्येष्ठा को प्रासाद के बाहर अकेली खड़ी देखकर सुबन्धु विस्मित हो उठा। वह उसके निकट जाकर प्रणाम करते हुए बोला—'देवी, मैं नगरपाल सुबन्धु हूँ। इतनी रात को आप यहाँ अकेली क्यों खड़ी हैं?'

सुज्येष्ठा अब इसका क्या प्रत्युत्तर दे? उसका माथा घूमने लगा। वह पकड़ी गयी। केवल 'मैं-मैं' कहते-कहते ही वह मूर्च्छित हो गयी।

सुबन्धु द्वारी के सन्धान में गया। देखा—द्वारी बिछौने पर सोया खर्राटे भर रहा है। तब अनुचित होते हुए भी वह कन्यान्तःपुर की ओर अग्रसर हुआ। कुछ दूर गया भी नहीं कि बान्धुलि से उसका साक्षात्कार हो गया। बान्धुलि घाट की ओर जाने के लिए दरवाजे की ओर बढ़ रही थी—सहसा सुबन्धु को सम्मुख पाकर ऐसी डरी मानो भूत ही देखा हो। बोली—'आर्य आप?'

'हाँ मैं। अधिक बोलने का समय नहीं है। देवी सुज्येष्ठा मूर्च्छित हो गयी हैं। शीघ्र आओ।'

बान्धुलि दौड़कर बाहर गई। सुबन्धु द्वारी के घर से जल लाकर उसके मुँह पर छींटे देने लगा। कुछ क्षण पश्चात् ही सुज्येष्ठा की चेतना लौटी। आँख खुलते ही बोली—'चेल्लना ?'

बान्धुलि कुछ झुककर बोली— मैं बान्धुलि हूँ।'

'तो क्या बान्धुलि, चेल्लना श्रेणिक के साथ चली गयी है ?'

बान्धुलि की आँखों के सम्मुख अंधकार छा गया। फिर भी अनजान बनी-सी बोली—'कौन श्रेणिक ? आपके माथे में चोट आयी है आप सो जाएँ।'

किन्तु सुबन्धु के सम्मुख सब कुछ स्पष्ट हो गया। वह जानता था महाराज चेटक ने मगधराज श्रेणिक की सुज्येष्ठा के प्रति पाणि ग्रहण की याचना को अस्वीकृत कर दिया था। अतः सुज्येष्ठा को अन्तःपुर से अपहरण करने का ही यह षड़यन्त्र था। किन्तु भ्रमवश वह सुज्येष्ठा के बदले चेल्लना का अपहरण करके ले गया है और इस अपहरण में बान्धुलि ही नहीं बल्कि श्रीमन्त भी लिप्त था। श्रीमन्त के माध्यम से संवादों का आदान-प्रदान होता था। श्रीमन्त और बान्धुलि की खबर तो वह बाद में लेगा अभी तो श्रेणिक का पीछा करना नितान्त आवश्यक है। फिर यह भी निश्चित है कि वह स्थलपथ से नहीं जलपथ से भागेगा। अतः शीघ्रता में वह जितने अनुचरों को एकत्रित कर पाया, उन्हें लेकर हिरण्यवती (वर्तमान गण्डकी) की ओर दौड़ा। दुर्ग अधिपति को एक बड़ी सेना भेजने की प्रार्थना कर संवाद भेजा।

सुबन्धु कुछ दूर पहुँचा भी नहीं कि प्रतिरोध के सम्मुखीन होना पड़ा। मगध सैनिकों के अव्यर्थ तीरों से उसके सैनिक एक-एक कर धराशायी होने लगे।

किन्तु उस रात्रि युद्ध में किसी की भी जय-पराजय नहीं हुई। अवश्य ही मगध सैनिकों में कोई भी प्राण लेकर लौट नहीं सका। सुबन्धु के रक्षकों को निरस्त्र करने में एवं दुर्ग से आए हुए नए सैनिकों के साथ युद्ध करने में उनके तीर समाप्त प्रायः हो गए थे। ऐसी अवस्था में असियुद्ध करते हुए उन्हें रोकने में अपने प्राणों को खो देना पड़ा।

सुबन्धु जब घाट पर पहुँचा तब उसे वहाँ एक लघु नौका के सिवाय और कुछ दिखायी नहीं पड़ा। वह नौका भी उन्हें आते देखकर दूर चली गयी। अतः निराश होकर सुबन्धु लौटने को बाध्य हुआ। श्रेणिक को वह पकड़ नहीं सका।

आकाश में उस समय कृष्णाष्टमी का चाँद उदित हुआ था। श्रेणिक का

वजरा गंगा में पहुँच गया था। अभी तक वह नव-वधु का मुख देख नहीं पाया था क्योंकि भागने की शीघ्रता थी। इसबार अस्फुट चन्द्रालोक में उन्होंने उसका मुख उठाया। बोला—'सुज्येष्ठा ?'

चेल्लना ने दृष्टि आनमित कर कहा—'मैं सुज्येष्ठा नहीं उसकी बहन चेल्लना हूँ.'

श्रेणिक ने प्रत्युत्तर नहीं दिया। चेल्लना के मुख की ओर देखता रहा। फिर सोचा—यह मुख भी तो उतना ही आश्चर्यजनक सुन्दर है।

श्रेणिक ने सुज्येष्ठा को चाहा था पाया चेल्लना को। किन्तु उससे उनका क्या बनता बिगड़ता। वैशाली की राजकन्या का अपहरण कर अपने अपमान का प्रत्युत्तर तो वैशाली को दे दिया। लौटकर सुज्येष्ठा को लाना सम्भव नहीं था। अतः उन्होंने चेल्लना को अपने आलिंगन में लेकर उसके ओष्ठों पर प्रगाढ़ चुम्बन अंकित कर दिया।

कथानक तो यहीं शेष है। फिर भी पाठकों के मन में प्रश्न जाग्रत हो सकता है—क्या हुआ बान्धुलि का और क्या हुआ सुज्येष्ठा का। बेचारी बान्धुलि का जीवन तो इतना तुच्छ था कि उसके विषय में किसी ने कुछ लिखा ही नहीं। इधर सुज्येष्ठा ने स्त्री सुलभ अलंकारों के प्रेम में इच्छित् वस्तु को पाकर भी खो दिया। इसका क्षोभ सदा-सदा के लिए उसके हृदय में रह गया। चेल्लना के व्यवहार ने भी उसे कम व्यथित नहीं किया। चाहने पर क्या वह उसके लौट आने की प्रतीक्षा नहीं कर सकती थी? परिणामतः सुज्येष्ठा का मन संसार से विरक्त हो गया। उसने साध्वी धर्म अंगीकार कर लिया।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

इस प्रकार के घोड़े पर चढ़कर सेनापति ने यमराज की तरह खड्ग रत्न ग्रहण किया। वह खड्ग शत्रु के लिए मृत्यु पत्र की तरह थी। वह खड्ग ५० अंगुल लम्बी १६ अंगुल विस्तृत ½ अंगुल मोटी थी। उसकी सुवर्ण म्यान रत्न जड़ित थी। वह म्यान बाहर थी इसलिए कंचुक मुक्त सर्प-सी लगती थी। वह अत्यन्त तीक्ष्ण थी। द्वितीय वज्र की भाँति वह शक्त थी— और विचित्र कमल श्रेणी की तरह दिखने वाले रंगों से शोभित थी। उस खड्ग को धारण कर सेनापति ऐसे लग रहे थे मानों वे पंखयुक्त शेषनाग या कवचधारी केशरी सिंह हों। आकाश में चमकती विद्युत की भाँति चपलता से खड्ग घुमाते हुए उन्होंने अपना अश्व रण भूमि की ओर धावित किया। जलकान्त मणि की तरह शत्रु रूप जल को चीरता हुआ वह अश्व रण क्षेत्र के मध्य जा उपस्थित हुआ।

सुषेण के आक्रमण से कुछ शत्रु मृग की भाँति व्याकुल हो गए। कुछ जमीन पर शशक की भाँति आँखें बन्द कर बैठ गए। कुछ रोहित मृग की भाँति थके हुए से वहीं खड़े रहे, कुछ बन्दरों की तरह दुर्गम स्थान पर जा बैठे। कइयों के हाथ के अस्त्र वृक्ष के पत्रों की तरह जमीन पर खिसक कर गिर गए। कइयों के छत्र उनके यश की तरह धूलिसात् हो गए। कुछ के घोड़े मन्त्र द्वारा चित्रार्पित सर्प से स्थिर हो गए। कुछ के रथ इस प्रकार टूट गए मानों वे मिट्टी द्वारा निर्मित हों। कुछ अपरिचितों की भाँति इधर-उधर भाग गए। उन्होंने अपने लोगों की अपेक्षा भी नहीं की। समस्त म्लेच्छगण प्राण लेकर दशों दिशाओं में भाग छूटे। जल के प्रवाह से आकृष्ट होकर वृक्ष जैसे बह जाते हैं उसी भाँति सुषेण रूपी जल के प्रवाह में म्लेच्छगण प्रवाहित हो गए। फिर वे सब काग की भाँति एक स्थान पर एकत्रित होकर कुछ क्षण विचार-विमर्श कर आतुर बालक जैसे माँ के पास जाता है उसी प्रकार महानदी सिन्धु के निकट गए और मानों मृत्यु स्नान करने को तैयार हो रहे हैं इस प्रकार बालु की शय्या पर बैठ गए। वहाँ बैठ कर आकाश की ओर मुख किए मेघमुख आदि नाग कुमार जातीय स्वकुल के

देवताओं को मन ही मन स्मरण करते हुए अष्टम तप किया। अष्टम तप के अन्त में मानों चक्री के चक्र भय से नाग कुमार देवताओं का आसन कम्पित हुआ। अवधि ज्ञान से म्लेच्छों को दुःखी देख पिता जैसे सन्तान के दुःख से दुःखी होते हैं उसी प्रकार दुःखी हो वे उनके सम्मुख आकर प्रकट हुए और आकाश में स्थित होकर बोले—'तुम लोग मन में उत्पन्न किस इच्छा की सफलता चाहते हो?'

आकाश स्थित मेघमुख नाग कुमारों को देखकर मानों वे अत्यन्त पिपासित हों इस प्रकार करबद्ध होकर मस्तक टेकते हुए बोले—'हमारे देश में आज तक किसी ने भी कभी आक्रमण नहीं किया। किन्तु इस समय कोई आ पहुँचा है। आप कुछ ऐसा करिए जिससे वे यहाँ से चले जाएँ।' देवगण बोले—'हे किरातगण, ये भरत चक्रवर्ती राजा हैं। ये इन्द्र की भाँति अजेय हैं। देव असुर या मनुष्य कोई इन को पराजित नहीं कर सकता। छेनी द्वारा जिस प्रकार पर्वत के पाषाण को विद्ध नहीं किया जा सकता उसी प्रकार पृथ्वी पर चक्रवर्ती राजा मन्त्र, तन्त्र, विष, शस्त्र एवं विद्याओं के लिए अभेद्य हैं। उनके पास कोई नहीं पहुँच सकता। फिर भी तुम्हारी इच्छा से हम उनको क्षति पहुँचाने की चेष्टा करेंगे।' ऐसा कहकर वे चले गए।

क्षण मात्र में पृथ्वी से कूदकर समुद्र जैसे आकाश में आ गया हो इस प्रकार काजल से मेघ आकाश में छा गए। विद्युत रूप तर्जनी अंगुली से जैसे चक्रवर्ती सैन्य का तिरस्कार कर रहे हों एवं मेघ निनाद द्वारा क्रुद्ध होकर बार-बार उनका अपमान कर रहे हों ऐसे वे दिखाई देने लगे। सैन्य को चूर्ण करने के लिए वह सेना जहाँ तक विस्तृत थी वहाँ तक संचारित वज्र शिला से मेघ महाराज की छावनी पर छा गए। और लौह खण्ड-से तीक्ष्ण अग्रभाग-विशिष्ट तीर और दण्ड रूप पानी बरसाने लगे। सारी धरती वर्षा के जल में डूब गयी। रथ नौका की भाँति, हस्ती आदि मकर की भाँति प्रतीत होने लगे। सूर्य मानों किसी दिशा में चला गया, पर्वत जैसे कहीं खो गए हों इस प्रकार मेघों का अन्धकार काल-रात्रि-सा दिखायी देने लगा। ऐसा लगा मानों पृथ्वी पर पुनः युग्म धर्म प्रवर्तित होने वाला हो।

ऐसी अनिष्टकारी दुःखदायी वृष्टि देखकर चक्रवर्ती ने कृपापात्र भृत्य की तरह अपने हाथों से चर्म रत्न को स्पर्श किया। उत्तरी पवन से जैसे मेघ विस्तृत हो जाते हैं उसी प्रकार चक्रवर्ती के हस्त स्पर्श से चर्म रत्न बारह योजन पर्यन्त विस्तृत हो गया। समुद्र जल के मध्य द्वीप में जिस प्रकार

मनुष्य रहते हैं उसी प्रकार चर्म रत्न पर समस्त सैन्य सहित महाराज भरत अवस्थित हो गए। तदुपरान्त विद्रुम से जैसे क्षीर समुद्र शोभित होता है उसी प्रकार सुन्दर कान्ति सम्पन्न ९९ वें हजार शलाकाओं से सुशोभित व्रण और ग्रन्थि रहित कमल नाल से सीधे सुवर्ण दण्ड युक्त जल, धूप, हवा और धूल से बचाने में समर्थ छत्र-रत्न को राजा ने स्पर्श किया जिससे चर्म रत्न की तरह वह भी विस्तृत हो गया। इस छत्र दण्ड पर अन्धकार विनाश करने के लिए राजा ने सूर्य-सा मणिरत्न रखा। छत्र रत्न और चर्म रत्न का वह सम्पुट प्रवहमान अण्डे-सा लगने लगा। उससे लोक में ब्रह्माण्ड की कल्पना उत्पन्न हुई। गृही रत्न के प्रभाव से उस चर्म रत्न पर उत्कृष्ट खेत-सा सुबह बोया धान्य सन्ध्या में उत्पन्न होने लगा। चन्द्र के प्रसाद की तरह उससे सुबह बोया कुम्हड़ा, पालक, मूली आदि दोपहर में फलने लगे। सुबह बोए आम केला आदि फलों के वृक्ष भी दोपहर में महापुरुषों द्वारा आरम्भ किए कार्य जिस तरह सफल होते हैं उसी प्रकार सफल होने लगे। उस सम्पुट में निवास करने वाले मनुष्यगण उपरोक्त धान-शाक और फलादि का भोजन कर प्रसन्न थे। उन्हें लगता जैसे वे उद्यान में घूम रहे हैं अतः इस प्रकार उनको सैनिक जीवन का श्रम भी अनुभूत नहीं हो रहा था। मानो राजमहल में ही निवास कर रहे हों इस प्रकार मध्यलोक के अधिपति राजा भरत चर्म रत्न और छत्र रत्न के मध्य परिवार सहित रहने लगे। उधर कल्पान्त काल की भाँति वारि वर्षण करते-करते सात दिन सात रात व्यतीत हो गयी।

तब राजा के मन में विचार उत्पन्न हुआ कौन पापी हमें इस प्रकार कष्ट दे रहा है? राजा के विचार को ज्ञात कर उनके निकट अवस्थानकारी और महा पराक्रमी सोलह हजार यक्ष उनके कष्टों को दूर करने के लिए प्रस्तुत हुए। उन्होंने तूणीर बाँधे धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ायी और मानों अपनी क्रोधरूपी अग्नि से शत्रुओं को जलाकर मार देना चाहते हों इस प्रकार नाग कुमार देवताओं के सम्मुखीन होकर बोले—'अरे ओ दुष्ट मूर्खों के दल, तुम क्या पृथ्वीपति भरत चक्रवर्ती को नहीं जानते? ये समस्त संसार में अजेय हैं। इन्हें कष्ट देने का प्रयास तुम्हें उस प्रकार कष्ट देगा जैसे पर्वत पर दन्त द्वारा प्रहार करने वाले हस्तियों को होता है। अभी भी तुमलोग कीट पतंगों की तरह यहाँ से दूर चले जाओ नहीं तो तुम्हें इस प्रकार मरना होगा जिस प्रकार आज तक कोई नहीं मरा।'

यह सुनकर मेघमुख नागकुमार देवगण भयभीत हो गए और वर्षा को इस

प्रकार समेट लिया जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक इन्द्रजाल को। फिर वे किरातों को बोले—'तुमलोग महाराज भरत की शरण ग्रहण करो।' ऐसा कहकर स्व-आवास को चले गए।

देवताओं के वाक्य से निराश होकर म्लेच्छगणों ने कोई आश्रय स्थल न पाकर राजा भरत की शरण ग्रहण की। उन्होंने मेरु पर्वत के सार से स्वर्ण का ढेर, अश्व रत्न के प्रतिबिम्ब से लक्ष-लक्ष घोड़े राजा भरत को उपहार में दिए। फिर करबद्ध होकर माथा झुकाए सुन्दर वाक्य गर्भित वाणी से जैसे वन्दीजनों के सहोदर हों बोले—'हे जगत्पति, अखण्ड, प्रचण्ड पराक्रमी आपकी जय हो। छः खण्ड पृथ्वी पर आप इन्द्र तुल्य हैं। महाराज, हमारे प्रदेश के दुर्गतुल्य वैताढ्य पर्वत के गुहा द्वार को आपके अतिरिक्त और कौन खोल सकता है? हे विजयी, आकाश के ज्योतिष चक्र की तरह जल पर समस्त सेना की छावनी रखने की शक्ति और किसमें है? हे स्वामी, अद्भुत शक्ति के लिए आप अजेय हैं यह अब हम समझ गए हैं अतः हम अज्ञानियों के समस्त अपराध आप क्षमा करें। हे नाथ, नवीन जीवन देने वाले आप हमारे रक्षक बनें। आज से हम आपके आज्ञानुवर्ती रहेंगे।' कृत्यविद् भरत ने उन्हें अपने अधीन कर लिया और सत्कार पूर्वक विदा किया। कहा भी गया है उत्तम पुरुष का क्रोध प्रणाम की अवधि तक ही रहता है अर्थात् विरोधी जब तक नत नहीं होता तब तक ही उनका क्रोध रहता है। चक्रवर्ती की आज्ञा से सेनापति सुषेण ने समुद्र और पर्वत की मर्यादा रूप समुद्र के उत्तर निष्कुट तक अर्थात् द्वार पर्यन्त सबको जय कर लिया। चक्रवर्ती भरत ने दीर्घकाल तक वहाँ सुख पूर्वक अवस्थान किया मानो वे अपने साहचर्य से अनार्यों को भी आर्य बनाना चाहते हों।

एक दिन दिग्विजय के न्यास रूप में रक्षित तेजस्वी विशाल चक्ररत्न राजा की आयुधशाला से बाहर निकला और क्षुद्र हिमवन्त पर्वत की ओर पूर्व दिशा के पथ पर चलने लगा। जिस प्रकार जल का प्रवाह नाली पथ से हो जाता है उसी प्रकार चक्रवर्ती चक्र के पीछे-पीछे चलने लगे। गजेन्द्र की तरह लीलामय प्रयाणकारी महाराज भरत कई दिन प्रयाण के पश्चात् क्षुद्र हिमवन्त के दक्षिण भाग की ओर आए। भोज पत्र, टगर और देवदारु वृक्ष पूर्ण उस प्रदेश के पाण्डुक वन में महाराज भरत ने इन्द्र की भाँति छावनी डाली। वहाँ क्षुद्र हिमाद्रि कुमार देवों के उद्देश्य से ऋषभात्मज ने अष्टम तप किया। कारण कार्य सिद्धि के लिए तपस्या प्रारम्भिक मंगल है। रात्रि व्यतीत होने पर सूर्य जैसे पूर्व समुद्र से

निकलता है उसी प्रकार अष्टम तप पूर्ण होने पर सुबह ही तेजस्वी महाराज रथ पर आरूढ़ होकर छावनी रूपी समुद्र से बाहर निकले और अभिमान सहित शीघ्र गमन कर महाराजों के मध्य अग्रणी उन्होंने अपने रथ के अग्रभाग द्वारा क्षुद्र हिमालय पर्वत पर तीन बार आक्रमण किये। धनुर्धरों की तीर चलाते समय जो आकृति होती है उसी आकृति में अवस्थित होकर महाराज ने निज नामांकित तीर हिमाचल कुमार देवताओं की ओर निक्षेप किया। पक्षी की तरह बहत्तर योजन पर्यन्त आकाश में उठकर वह तीर हिमाचल कुमार देवता के सम्मुख जाकर गिरा। अंकुश देखकर जैसे उन्मत्त हस्ती क्रुद्ध हो जाता है उसी प्रकार शत्रु तीर देखकर हिमाचल कुमार देव के नेत्र भी क्रोधारक्त हो गए। किन्तु जब उन्होंने तीर को उठाकर देखा और उस पर अंकित नाम पढ़ा तब उनका क्रोध इस प्रकार शान्त हो गया जैसे दीपक देखकर सर्प शान्त हो जाता है। तब वे प्रधान पुरुष की भाँति उस तीर को भी साथ लेकर उपहारों सहित भरतेश्वर के निकट आए। आकाश में स्थित रहकर जय-जय शब्द उच्चारित कर तीर प्रस्तुतकारक की तरह वह तीर भरत को दिया और फिर देववृक्षों के पुष्पों से ग्रथित माला, गोशीर्ष चन्दन, सर्वोषधि और द्रह जल आदि चक्रवर्ती को उपहार में दिए कारण ये ही सब द्रव्य उनके लिए सार रूप थे। पाँवों के कड़े, बाजूबन्द और दिव्य वस्त्र उन्होंने महाराज को दण्ड के रूप में दिए और बोले—'हे प्रभो, उत्तर दिशा के प्रान्त भाग में मैं आपके अनुचर की भाँति अवस्थान करूँगा।' ऐसा कहकर जब वे चुप हो गये तब भरत ने सत्कार पूर्वक उन्हें बिदा किया। फिर वे मानों हिमालय के शिखर हों या शत्रु के मनोरथ हों ऐसे अपने रथ को प्रत्यावर्तित किया।

वहाँ से ऋषभपुत्र ऋषभकूट गए। हस्ती जैसे दन्त द्वारा पर्वत पर आघात करता है उसी प्रकार उन्होंने अपने रथ के अग्रिम भाग द्वारा तीन बार ऋषभकूट पर्वत पर आघात किया। फिर सूर्य जैसे किरण-कोष को ग्रहण करता है उसी प्रकार चक्रवर्ती ने रथ वहीं ठहरा कर कांकिणी रत्न ग्रहण किया और कांकिणी रत्न द्वारा पर्वत के पूर्व शिखर पर लिखा—अवसर्पिणी काल के तृतीय आरे के शेष भाग में मैं भरत नामक चक्रवर्ती हुआ हूँ। ऐसा लिखकर वे अपनी छावनी में लौट आए और इसके लिए जो अष्टम तप किया था उसका पारना किया। फिर हिमालय कुमार की तरह ऋषभकूट पति के लिए भी चक्री के वैभवानुरूप अष्टाह्निका महोत्सव किया।

गंगा और सिन्धु नदी का मध्य भू-भाग में जैसे समा नहीं रहा है ऐसे आकाश में उछलने वाले अश्वों से, सैन्य भार से प्रपीड़ित धरती को मद जल

से सिंचित करने की इच्छा रखता है ऐसे मदजल प्रवाही हस्तियों से, कठोर रथ चक्र की रेखाओं से, पृथ्वी को अलंकृत करता हो ऐसे उत्तम रथों से और नराद्वैत (मनुष्य के सिवाय और कुछ नहीं) ऐसी स्थिति प्रतिपन्नकारी अद्वितीय पराक्रमशाली पृथ्वी व्याप्त कोटि-कोटि पदातिकों से परिवृत चक्रवर्ती महावत की इच्छानुसार गमनकारी हाथी की तरह चक्र के पीछे वैताढ्य पर्वत पर आए और उस पर्वत के उत्तर भाग में जहाँ शबर रमणियाँ आदिश्वर का अनिन्दित गीत गाती हैं वहाँ छावनी डाली। वहाँ अवस्थान कर उन्होंने नमि और विनमि नामक विद्याधर के पास दंड याचना कारी तीर निक्षेप किया। तीर देखकर वे दोनों विद्याधरपति क्रुद्ध हुए और परस्पर विचार करने लगे। एक बोला—'जम्बूद्वीप के भरत खण्ड में ये भरत राजा प्रथम चक्रवर्ती हुए हैं। ये ऋषभकूट पर्वत पर चन्द्र बिम्ब की भाँति अपना नाम अंकित कर लौटते समय हमारे यहाँ आए हैं। हस्ती के आरोह की तरह इन्होंने वैताढ्य पर्वत के पार्श्व में छावनी डाली है। इन्होंने सर्वत्र जय लाभ किया है। इन्हें अपने बाहुबल पर अभिमान हो गया है। ये हमलोगों को भी जीतना चाहते हैं और इसीलिए इन्होंने उद्दण्ड तीर हमारे पास भेजा है।'

इस प्रकार विचार विमर्श कर दोनों युद्धके लिए तैयार होकर अपनी-अपनी सेना से पर्वत शिखर आच्छादित करने लगे। सौधर्म और ईशान पति की देव सेना की तरह दोनों की आज्ञा से विद्याधरों की सेना ने आना आरम्भ किया। उनके किल-किल शब्दों से लगता मानो वैताढ्य पर्वत हँस रहा है, गरज रहा है, फट रहा है। विद्याधरेन्द्रों के सेवक गण वैताढ्य पर्वत की गुहा की भाँति सोने के वृहद्-वृहद् ढोल बजाने लगे। उत्तर और दक्षिण के नगर जनपद और ग्राम के नायक मानों रत्नाकर के पुत्र हों इस प्रकार विभिन्न प्रकार के रत्न, अलंकार धारण कर गरुड़ की भाँति अस्खलित गति से आकाश में विचरण करने लगे। एक साथ जाते हुए नमि विनमि दोनों एक दूसरे के प्रतिबिम्ब से लगते थे। अनेक विचित्र माणिक्यों की प्रभा से दिक् समूहों को प्रकाश करने वाले विमान में बैठकर वे वैमानिक देव नहीं हैं यह प्रतिपन्न न हो इस प्रकार चलने लगे। अनेक पुष्करावर्त्त मेघों की भाँति मद बिन्दु बरसाने वाले एवं गरजने वाले गन्ध हस्ती पर आरुढ़ होकर चलने लगे। अनेक सूर्य और चन्द्र के तेज से परिपूर्ण स्वर्ण और रत्न निर्मित रथ में बैठकर चलने लगे। अनेक आकाशपथ पर उत्तम गति के द्रुतधावनकारी अश्वों पर चढ़कर वायु कुमार देवों की भाँति चलने लगे। अनेक हाथों में अस्त्र लेकर वज्र कवच धारण कर मर्कट की भाँति उल्लास में उछलते हुए

चलने लगे। इस प्रकार विद्याधर सैन्य से परिवृत होकर युद्ध के लिए प्रस्तुत नमि विनमि वैताढ्य पर्वत से नीचे उतर कर भरतपति के सम्मुख उपस्थित हुए।

आकाश से उतरती हुई विद्याधर सेना ऐसी लग रही थी मानो अपने मणिमय विमानों के द्वारा वह आकाश को अनेक सूर्यमय कर रही थी। चमकित हस्ती यूथों से विद्युतमय कर रही थी। वृहद्-वृहद् भेरियों के शब्दों से शब्दायमान् कर रही थी। 'अरे ओ दण्ड प्रत्याशी! तू मुझसे क्या दण्ड लेगा!' ऐसा कहते-कहते विद्या के मद में उन्मत्त उन दोनों विद्याधरों ने युद्ध के लिए भरतपति का आह्वान किया। तदुपरान्त दोनों पक्षों की सेना विविध अस्त्रों के प्रहार से युद्ध करने लगी। कारण जय लक्ष्मी युद्ध के द्वारा ही प्राप्त होती है। बारह वर्षों तक युद्ध चला। अन्ततः विद्याधर पराजित हुए। भरत ने विजय प्राप्त की। तब उन्होंने करबद्ध होकर भरत को प्रणाम किया और बोले—'हे कुल स्वामी! जैसे सूर्य से अधिक तेजस्वी कोई नहीं है, वायु से अधिक वेगगामी कोई नहीं है, मोक्ष से अधिक सुखदायी कुछ नहीं है उसी भाँति आपसे अधिक शूरवीर भी कोई नहीं है। हे ऋषभ स्वामी के पुत्र, आपको देखकर हम अनुभव करते हैं कि हम साक्षात् ऋषभ स्वामी को ही देख रहे हैं। अज्ञानतावश हमने आपको जो कष्ट दिया उसके लिए आप हमें क्षमा प्रदान करें। कारण आज आपने ही हमें अज्ञानता से मुक्त किया है। पहले हम जैसे ऋषभदेव के भृत्य थे उसी प्रकार अब आपके भृत्य हो गए हैं। क्योंकि स्वामी की भाँति ही स्वामी पुत्रों की सेवा भी लज्जाजनक नहीं होती। हे महाराज, उत्तर और दक्षिण भरत के मध्य अवस्थित वैताढ्य के दो भागों में हम दुर्ग रक्षकों की तरह आपकी आज्ञा का पालन करेंगे।

फिर राजा विनमि यद्यपि राजा को कुछ उपहार देना चाहते हों तब भी मानों कुछ प्रार्थना भी कर रहे हों इस प्रकार उन्हें नमस्कार कर करबद्ध होकर लक्ष्मी स्वरूपा स्त्रियों में रत्न स्वरूपा अपनी सुभद्रा नामक कन्या चक्री को उपहार में दी।

सुभद्रा की आकृति इस प्रकार समचतुरस्र थी मानो उसे परिमाप कर ही निर्मित किया हो। उसकी कान्ति इतनी प्रदीप्त थी मानो त्रिलोक माणिक्य की पुंज हो। यौवन भार से एवं चिरकाल सुन्दर केश, नखों से वह इस प्रकार शोभित हो रही थी मानों वह कृतज्ञ सेवकों से परिवृत हो। दिव्य औषधि की भाँति वह समस्त रोग शान्त कर सकती थी। दिव्य जल की भाँति वह इच्छानुकूल शीत और ऊष्ण स्पर्शयुक्त हो सकती थी। वह तीन

स्थानों पर कृष्ण, तीन स्थानों पर श्वेत और तीन स्थानों पर ताम्रवर्णा थी। तीन स्थान पर उन्नत, तीन स्थान पर गम्भीर तीन स्थान पर विस्तीर्ण और तीन स्थान पर कृश थी। अपने केश कलाप से वह मयूर के कलाप को भी निन्दित कर रही थी और ललाट से अष्टमी के चन्द्र को पराजित। उसके नेत्र रति और प्रीति के क्रीड़ा सरोवर से थे। उसके सुन्दर गण्डदेश नवीन दर्पण-से थे। स्कन्ध स्पर्शी उसके दोनों कर्ण मानो दो हिंडोले थे। उसके ओष्ठ एक साथ पके बिम्बफल तुल्य थे। दाँत हीरक कर्णिका की शोभा को भी पराभव करने योग्य थे। उसकी ग्रीवा उदर की भाँति तीन रेखाओं से युक्त थी। उसके दोनों बाहु मृणालनाल की तरह सीधी कमल-से कोमल थे। उसके दोनों स्तन कामदेव के कल्याण-कलश से थे। स्तनों ने समस्त स्फीतता को हरण कर लिया था अतः उसका उदर कोमल और कृश था। उसका नाभि-मण्डल भ्रमर के आवर्त्त का-सा था। उसके लोम समूह नाभि रूप सरोवर के तट पर अंकुरित दूर्वातुल्य थे। उसके वृहदाकार नितम्ब युगल मानो कामदेव के शय्या रूप थे। उसकी दोनों जाँघें हिण्डोले के स्वर्णदण्ड-सी सुन्दर थी। उसके पैर हरिणी के पैरों को भी तिरस्कृत करते थे। उसकी पद लियाँ करतल-सा कमल का तिरस्कार कर रही थी। ऐसा लगता था मानों वह हाथ-पाँव के अंगुलियों रूपी पत्र से शोभित लता या प्रकाशित नख रूपी रत्न से रत्नाचल की धार या विस्तृत स्वच्छ कोमल और सुन्दर वस्त्र से मृदु-पवन-सी तरंगित सरिता हो। स्वच्छ कान्ति से झलमल करते सुन्दर अवयव में वह अपने स्वर्ण और रत्नमय अलंकारों को सुशोभित कर रही थी। छाया-सी अनुगामिनी छत्र-धारिणी उसकी सेवा कर रही थी। दो हंसों से शोभित कमलिनी की तरह आन्दोलित दो चँवरों से वह सुशोभित थी। लक्ष्मी जिस प्रकार अनेक अप्सराओं द्वारा, गंगा अनेक नदियों द्वारा शोभित होती है उसी प्रकार वह सुन्दरी कन्या समवयस्क हजार-हजार सखियों द्वारा शोभित थी।

नमि राजा ने भी महा मूल्यवान रत्न उन्हें उपहार में दिए कारण प्रभु जब गृह आते हैं तब महान लोग उन्हें सर्व प्रकार का उपहार देते हैं। उनके लिए अदेय कुछ नहीं रहता। तदुपरान्त भरतपति ने उन्हें विदा दी। वे घर लौटकर अपने-अपने पुत्रों को राज्य देकर वैराग्यवान बने ऋषभदेव के चरणों में उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने व्रत ग्रहण किया।

महातेजस्वी भरत चक्रवर्ती वहाँ से चक्र रत्न के पीछे-पीछे गंगा तट पर आए। गंगा तट से बहुत दूर भी नहीं समीप भी नहीं हो ऐसे स्थान पर

उन्होंने छावनी डाली। महाराज की आज्ञा से सुषेण ने सिन्धु नदी की तरह ही गंगा अतिक्रम कर उसका उत्तरी निष्कुट प्रदेश जय कर लिया। फिर भरत चक्रवर्ती ने अष्टम तप कर गंगा की अराधना की।

समर्थ पुरुषों की प्रचेष्टा उसी समय सिद्धिदानकारी होती है। अतः गंगादेवी ने प्रसन्न होकर दो रत्नमय सिंहासन और एक हजार आठ रत्नमय कुम्भ भरत को प्रदान किये। रूप लावण्य में कामदेव को भी किंकर के समान बनाने वाले राजा भरत को देखकर गंगादेवी का मन विचलित हो गया। उसने समस्त शरीर में मुखरूपी चन्द्रिका का अनुसरणकारी मनोहर तारका-से मुक्ता के अलंकार और केले के भीतर की त्वचा-सा वस्त्र धारण कर रखा था। देखकर लगता था जैसे उसका जल प्रवाह ही वस्त्र-रूप में परिणत हो गया है। रोमांच रूपी कण्टकों से उसके उरोजों की कंचुकी खुलने लगी। मानों स्वयंवर माला हो ऐसी धवल दृष्टि वह बार-बार भरत पर निक्षेप करने लगी। उसी अवस्था को प्राप्त गंगा लीला-विलास के लिए प्रेम भरे गद्‌गद् वाक्यों से राजा भरत को विनती कर अपने शयन कक्ष में ले गयी। वहाँ राजा भरत ने विविध भोग-उपभोग करते हुए एक हजार वर्ष एक रात्रि की भाँति व्यतीत किए। फिर किसी भाँति गंगा को बोध देकर उसकी आज्ञा से वहाँ से निकले और अपनी प्रबल सैन्य लिए खण्ड प्रपाता गुहा की ओर गमन किया।

केशरी सिंह जैसे एक वन से दूसरे वन में जाता है उसी प्रकार अखण्ड पराक्रमी राजा भरत ने खण्ड प्रपाता गुफा की ओर गमन किया। गुहा से कुछ दूरी पर उस बलशाली राजा ने छावनी डाली। वहाँ उस गुहा के अधिष्ठायक नाट्यमाल देव को मन में धारण कर अष्टम तप किया। उससे उस देवता का आसन कम्पित हुआ। अवधि ज्ञान से राजा भरत का आगमन अवगतकर जैसे ऋणी ऋणदाता के पास जाता है उसी प्रकार उपहार द्रव्य लेकर वह भरत राजा के निकट गया। महाभक्ति सम्पन्न उस देव ने छः खण्ड भूमि के अलंकार तुल्य महाराज भरत को अलंकार उपहार में दिए और उनकी सेवा करना स्वीकार किया। नाटक करने वाले नट की तरह नाट्यमाल देव को विवेकी चक्रवर्ती ने प्रसन्न होकर विदा दी और पारना कर उस देवता के लिए अष्टाह्निका महोत्सव किया।

फिर चक्री ने सुषेण को 'खण्ड प्रपाता गुहा के द्वार खोलो' आदेश दिया। सेनापति ने मन्त्र की तरह नाट्यमाल देव क मना ही मन ध्यान किया। तदुपरान्त अष्टम तप कर पौषधशाला में जाकर पौषधव्रत ग्रहण किया। अष्टम तप

कर उन्होंने पौषधशालासे निर्गत होकर प्रतिष्ठा कार्यमें श्रेष्ठ आचार्य जैसे बलि विधान करते हैं उसी प्रकार बलि विधान किया। फिर प्रायश्चित और कौतुक मंगल कर बहुमूल्यवान् स्वल्प वस्त्र धारण कर हाथ में धूपदान लिए उस गुहा के निकट आए। गुहा को देखते ही पहले तो उसे नमस्कार किया फिर उसका द्वार खोलने के लिए सात-आठ कदम पीछे जाकर मानो दरवाजे की कुंजी हो ऐसे सुवर्ण दण्ड को हाथ में लेकर दरवाजे पर प्रहार किया। सूर्य किरण से जैसे कमल विकसित होता है वैसे ही दण्ड रत्न के आघात से दोनों दरवाजे खुल गए।

गुहाद्वार खुलने की सूचना सेनापति ने चक्रवर्ती को दी। तब भरत चक्रवर्ती हस्ती पृष्ठ पर आरुढ़ होकर दाहिने स्कन्ध पर मणिरत्न रख गुहा में प्रविष्ट हुए। राजा भरत अन्धकार विनष्ट करने के लिए तमिस्रा गुहा की भाँति इस गुहा में भी कांकिणी रत्न से मण्डल रचना कर अग्रसर हो रहे थे और सैन्य दल उनके पीछे-पीछे बढ़ रहा था। जिस प्रकार दो सखियाँ तीसरी सखी से मिलती हैं उसी प्रकार गुहा की पश्चिमी दीवाल से वहिर्गत होकर पूर्व दिशा की दीवाल के नीचे से प्रवाहित उन्मग्ना और निमग्ना नामक दो नदियाँ गंगा में मिलती थीं। वहाँ उपस्थित होकर तमिस्रा गुहा की तरह ही इन दोनों नदियों पर सेतु निर्माण कर चक्रवर्ती भरत ने सैन्य सहित उन नदियों को पार किया। सैन्य के शूल प्रहार से या वैताढ्य पर्वत की प्रेरणा से मानों गुहा के दक्षिण द्वार उसी मुहूर्त्त में स्वतः ही खुल गए। केशरी सिंह की भाँति उन नर केशरी भरत ने गुहा से निकल कर गंगा के पश्चिम तट पर छावनी डाली।

वहाँ नव निधि के उद्देश्य से पृथ्वी पति ने पूर्वकृत तप के द्वारा प्राप्त लब्धि से प्राप्तव्य लाभके मार्ग को निर्देश करनेवाला अष्टम तप किया। अष्टम तप के अवसान में नवनिधि प्रकटित हुई और महाराज के समीप पहुँची। एक-एक लब्धि एक-एक हजार यक्षों द्वारा अधिष्ठित थी। उनके नाम थे नैसर्प, पाण्डुक, पींगल, सर्वरत्नक, महापद्म, काल, महाकाल, मानव और शंख। ये नवनिधियाँ चक्र पर रक्षित थीं। इनकी उच्चता आठ योजन, विस्तार नौ योजन और दैर्घ दस योजन था। वैदूर्य मणि के दरवाजों से उनके मुख ढके हुए थे। उनकी आकृति समान थी एवं वे स्वर्ण व रौप्य से भरे हुए थे। उनकी देह पर चन्द्र सूर्य अंकित थे। निधि के नामानुसार ही उनके नाम थे। पल्योपम आयु सम्पन्न नागकुमार जाति के देवता उनके अधिष्ठायक थे।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अनेकान्त || अप्रैल-जून १९८३

इस अंक में है 'जैन न्याय के सर्वोपरि प्रस्तोता श्रीमद्भट्टाकलंकदेव' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'रूप शतक एक अनूठी आध्यात्मिक कृति' (कुन्दनलाल जैन), 'स्वयंभू की भाषा और देशी तत्व' (डा० देवेन्द्र कुमार जैन), 'भागलपुर की प्राचीन जैन प्रतिमाएँ' (डा० अजय कुमार सिन्हा), 'नागौर तथा उसमें स्थित भट्टारकीय दिगम्बर जैन ग्रन्थ भण्डार की स्थापना एवं विकास का संक्षिप्त इतिहास' (डा० पी० सी० जैन), 'जैन दर्शन में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय' (अशोक कुमार जैन), 'जैन साहित्य में वर्णित जैन जातियाँ' (डा० प्रेम सुमन जैन), 'आत्मा और शान्त रस : एक विसंगति' (पद्म चन्द्र शास्त्री), 'स्वाध्याय और उसकी महत्ता' (राका जैन)।

अमर भारती || जून-जुलाई १९८३

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'कर्मयुग के आदि प्रवर्तक : तीर्थंकर ऋषभदेव' (आचार्य राजकुमार), 'कर्म-धर्म में आदि गुरु : भगवान आदिनाथ' (पुष्पा शाह), 'तप साधना का महत्व' (डा० प्रतिमा जैन), 'जैन दर्शन में बन्ध-मोक्ष' (धनंजय कुमार सिंह), 'तीर्थंकर' (डा० उम्मेदमल मुणोत), 'नवकार महामन्त्र एक अध्ययन' (माल चन्द्र जैन)।

कुशल निर्देश || जुलाई १९८३

इस अंक में है 'श्री सहजानन्द घन जी महाराज का पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'अनेक की दृष्टि में एक : भगवान महावीर' (मुनि ललितप्रभ सागर), 'गुरु पारतन्त्र्य (मयरहियं) स्तोत्र' (श्री जिनदत्त सूरि, पद्यानुवाद : भँवरलाल नाहटा), 'चार प्रत्येक बुद्ध' (भँवरलाल नाहटा)।

जैन जगत || जुलाई १९८३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'संस्कार निर्माण में अभिभावक, शिक्षक एवं समाज की भूमिका' (डा० सागरमल जैन), 'परिग्रह अपरिग्रह' (मुनिश्री सुखलाल), 'संस्कार, परिष्कार' (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ)।

तीर्थंकर || जुलाई १९८३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'संशय के शुभाशीष' (बोध कथा : नेमीचन्द पटोरिया), 'जीव स्वरूप और लक्षण' (युवाचार्य महाप्रज्ञ), 'कोश रचना पद्धति : वह सहज विकसित होती गयी' (बातचीत, जिनेन्द्र वर्णी/ डा० नेमीचन्द जैन), 'अर्द्धकथानक' (बनारसी दास : अनु० राजकुमारी बेगानी), 'अन्तिम पृष्ठ : चिन्तन के रूप में खत' (गणेश ललवानी)।

Vol. VII No. 5 : Titthayara : September 1983
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) Pvt. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700 001